अनेकांतवाद

श्री यशोमल एम० ए०

* श्री वीतरागाय नमः *

अनेकांतवाद

ट्रैक्ट नं० ९३

लेखक—

श्री लाला कन्नोमल जी एम० ए०,

(माधुरी-विशेषाँक १९२७ से उद्धृत)

प्रकाशक

मन्त्री—श्री आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसायटी,

अम्बाला शहर ।

बाबू गणपतस्वरूप भटनागर मैनेजर के प्रबन्ध से
मौडल प्रिंटिंग प्रेस, अम्बाला छावनी में मुद्रित ।

वीर संवत् २४५४
आत्म संवत् ३२

मूल्य -)

विक्रम सं० १९८४
ईस्वी सन् १९२७

अनेकांतवाद

जैन सब वस्तुओं को अनेकांत मानते हैं, अर्थात् किसी वस्तु के लिये यह नहीं कहते हैं कि वह सर्वथा ऐसी ही है। क्योंकि भिन्न-भिन्न अवस्थाओं और व्यवस्थाओं में वस्तुओं के भिन्न भिन्न रूप होते हैं। अब हम यह कहें कि यह गिलास सुवर्ण का है, तो उससे हमारा अभिप्राय है कि वह परमाणुओं का समुदाय-रूप है, और यही द्रव्य है—आकाश द्रव्य नहीं है, अर्थात् सुवर्ण का गिलास केवल एक अर्थ में द्रव्य है—सब अर्थों में द्रव्य नहीं है। आकाश अथवा काल द्रव्य पृथक् है और सुवर्ण द्रव्य पृथक् है। यह द्रव्य तो केवल परमाणुओं का समूह है। इस प्रकार एक ही समय में सुवर्ण द्रव्य भी है, और द्रव्य नहीं भी है। वह पृथ्वी परमाणुओं का बना हुआ है—जल परमाणुओं का नहीं। पृथ्वी-परमाणुओं से बने हुए होने का अर्थ यह है कि सुवर्ण पृथ्वी के धातुरूप का विकार है न कि पृथ्वी का अथवा और कोई विकार है—जैसे कि मृत्तिका, पत्थर आदि। धातु परमाणुओं से बने होने का आशय यह है कि वह सुवर्ण के परमाणुओं से बना है—लोहे के परमाणुओं से नहीं। सुवर्ण के परमाणुओं से भी अभिप्राय पिघलाए हुए और शुद्ध सुवर्ण के परमाणुओं से है, न कि खान के, बिना शुद्ध किए हुए, सुवर्ण के परमाणुओं से। फिर पिघलाए हुए और

अनेकांतवाद

जैन सब वस्तुओं को अनेकांत मानते हैं, अर्थात् किसी वस्तु के लिये यह नहीं कहते हैं कि वह सर्वथा वैसी ही है। क्योंकि भिन्न भिन्न अवस्थाओं और व्यवस्थाओं में वस्तुओं के भिन्न भिन्न रूप होते हैं। जब हम यह कहें कि यह गिलास सुवर्ण का है, तो उससे हमारा अभिप्राय है कि यह परमाणुओं का समुदाय-रूप है, और यही द्रव्य है—आकाश द्रव्य नहीं है, अर्थात् सुवर्ण का गिलास केवल एक अर्थ में द्रव्य है—सब अर्थों में द्रव्य नहीं है। आकाश अथवा काल द्रव्य पृथक् है और सुवर्ण द्रव्य पृथक् है। यह द्रव्य तो केवल परमाणुओं का समूह है। इस प्रकार एक ही समय में सुवर्ण द्रव्य भी है, और द्रव्य नहीं भी है। यह पृथ्वी-परमाणुओं का बना हुआ है—जल परमाणुओं का नहीं। पृथ्वी-परमाणुओं से बने हुए होने का अर्थ यह है कि सुवर्ण पृथ्वी के धातुरूप का विकार है न कि पृथ्वी का अथवा और कोई विकार है—जैसे कि मृत्तिका, पत्थर आदि। धातु परमाणुओं से बने होने का आशय यह है कि यह सुवर्ण के परमाणुओं से बना है—लोहे के परमाणुओं से नहीं। सुवर्ण के परमाणुओं से भी अभिप्राय पिघलाए हुए और शुद्ध सुवर्ण के परमाणुओं से है, न कि खान के, बिना शुद्ध किए हुए, सुवर्ण के परमाणुओं से। फिर पिघलाए हुए और

शुद्ध सुवर्ण से बना होने का अभिप्राय उस सुवर्ण से है, जिसे देवदत्त सुनार हथौड़े से पीटकर किसी रूप में लाया है न कि यज्ञदत्त सुनार। फिर पूर्वोक्त प्रकार से परमाणुओं से बने होने का अर्थ यह है कि वह गिलास के रूप में बना है—घट रूप में नहीं। इस प्रकार जैन कहते हैं कि वस्तुएँ केवल किसी विशेष सीमा तक सत्य कही जा सकती हैं—अथवा सत्य नहीं। जैनों का कथन है कि वस्तुओं के अनन्त धर्म हैं, जिनमें से प्रत्येक को सत्य किसी विशेष अर्थ में कह सकते हैं। घट जैसी साधारण वस्तु को अनन्त धर्मों का विषय बता सकते हैं, और अन्य दृष्टियों से उसे असत्य धर्मों का रखने वाला कह सकते हैं, जो किसी विशेष रूप में सत्य है, पर सब अवस्थाओं में सत्य नहीं। दरिद्रता में धन होना नहीं कह सकते, लेकिन यह कह सकते हैं कि इस दरिद्री मनुष्य के पास धन नहीं है। दरिद्री मनुष्य विध्यात्मक अर्थ में धन नहीं रखता है। इस प्रकार किसी-न किसी सम्बन्ध में कोई चीजें किसी अन्य चीज के विषय में कही जा सकती हैं, लेकिन दूसरे सम्बन्धों में वही चीज उसके विषय में नहीं कही जा सकती है।

भिन्न भिन्न दृष्टियाँ, जिनके कारण वस्तुओं में यह अथवा वह धर्म कह सकते हैं, अथवा उन्हें इस या उस सम्बन्ध में स्थित बता सकते हैं, नय के नाम से पुकारी जाती हैं।

नय सिद्धांत

वस्तुओं के विषय में व्यवस्था देने के लिये हमारे लिए दो मार्ग हैं। पहला यह कि हम किसी वस्तु के विविध गुण और धर्मों को देखें, पर उन्हें उसी वस्तु में एकत्रित हुए मानें। उदाहरण-जब हम कहें कि यह पुस्तक है तो हम उसके धर्मों को उस से पृथक् नहीं देखते हैं, बल्कि उसमें सम्मिलित देखते हैं दूसरा

मार्ग है कि हम वस्तु के गुण और धर्मों को वस्तु से पृथक् देखें और वस्तु को शून्यता मानें, जैसे कि बौद्ध लोग मानते हैं। इस दृष्टि से हम पुस्तक के धर्म और गुणों को पुस्तक से पृथक् देखेंगे और कहेंगे कि सिर्फ ये गुण ही दिखाई देते हैं, पुस्तक जिसमें ये गुण हैं दिखाई नहीं देती। इस लिये पुस्तक इन गुणों से पृथक् वस्तु नहीं है। इन दोनों दृष्टियों के नाम द्रव्यनय और पर्यायनय हैं, यानी पहला मार्ग द्रव्यनय कहलाता है और दूसरा पर्यायनय। द्रव्यनय तीन प्रकार का है और पर्यायनय चार प्रकार का, जिनमें से पहला प्रकार हमारे मतलब का है। और बाकी तीनों का काम व्याकरण और भाषा के सम्बन्ध में पड़ता है, इस लिये इनका उल्लेख यहाँ नहीं किया जा सकता है।

द्रव्यनय के तीनों प्रकारों को नैगमनय, संग्रहनय और व्यवहारनय कहते हैं।

जब हम सर्वसाधारण दृष्टि से किसी वस्तु को देखते हैं, तो हम अपने विचारों को स्पष्ट और यथार्थ नहीं कहते हैं मैं अपने हाथ में एक पुस्तक ले लूं, और जब कोई पूछे कि क्या तुम्हारा हाथ खाली है, तो जवाब दूं कि नहीं, मेरे हाथ में कुछ चीज है, या मैं यह कहूँ कि मेरे हाथ में पुस्तक है। पहले उत्तर में मैंने पुस्तक को अत्यन्त विस्तृत और सामान्य दृष्टि से देखकर उसे चीज कहा और दूसरे उत्तर में मैंने पुस्तक को उसके विशेषरूप में बताया। मैं किसी पुस्तक का एक पृष्ठ पढ़ रहा हूँ। किसी ने पूछा—क्या कर रहे हो? मैंने जवाब दिया कि पुस्तक पढ़ रहा हूँ, लेकिन वास्तव में मैं पुस्तक का एक पृष्ठ पढ़ रहा था। मैं कुछ खुले कागजों पर लिख रहा हूं, और कोई पूछे तो कहूँ कि यह मेरी जैनदर्शन-सम्बन्धी पुस्तक है—वास्तव में कोई पुस्तक नहीं है, सिर्फ कुछ खुले हुए कागज हैं। हमें जैसी चीज दिखाई

हैं वैसी ही उन्हें पहला नैगम दृष्टि कहलाती है। वस्तु में अत्यन्त सामान्य धर्म भी होते हैं और अत्यन्त विशेष धर्म भी। हम चाहें उसे पहले रूप में देखें या दूसरे में। जब हम एक रूप में देखें तो उसका दूसरा रूप छिपा रहता है। जैसे मेरे हाथ में पुस्तक है तो किसी के कहने पर मैं कहता हूँ—मेरे हाथ में कुछ चीज है। यह पहली दृष्टि है, और जब मैं कहूँ कि मेरे हाथ में पुस्तक है, तो यह दूसरी दृष्टि है। जैनों की संमति में न्याय और वैशेषिक शास्त्र अनुभव को इसी दृष्टि से देखते हैं।

संग्रहनय द्वारा हम वस्तुओं को अत्यन्त व्यापक और साधारण दृष्टि से देखते हैं। जैसे हम सब पृथक् पृथक् वस्तुओं को एक व्यापक दृष्टि से कहें कि वे, सत्ता वाली हैं। जैनों क मतानुसार यह वेदान्त शास्त्र की दृष्टि है।

व्यवहार दृष्टि इस प्रकार है—किसी पुस्तक को लो। उस पुस्तक में और दूसरी सब पुस्तकों में कुछ लक्षण एक से ज़रूर हैं, लेकिन इसमें कुछ विशेष लक्षण भी हैं, जो दूसरी पुस्तकों में नहीं हैं। इसके परमाणुओं में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। लेकिन इस परिवर्तन होने पर भी यह कुछ भूतकाल स पुस्तक के रूप में चली आई है और भविष्यत् में भी कुछ काल तक पुस्तक रहेगी। हमारे प्रतिदिन के अनुभव की पुस्तक का सारांश ये लक्षण ही हैं। इनमें से किसी लक्षण को पृथक् नहीं कर सकते, और कह सकते कि यह लक्षण पुस्तक का रूप है। जैनों के मतानुसार यह सांख्यवालों की दृष्टि है। वस्तु का वास्तव में जैसा अनुभव होवे, उसी दृष्टि से उसे देखना वस्तु का असली रूप है इसमें सामान्य और विशेष दोनों लक्षण आ जाते हैं, जो पहले से बने हैं और आगे भी बने रहेंगे। इनके होते पर भी कुछ-कुछ

परिवर्तन होता रहता है जो परिवर्तन हमारे काम के हजारों तरह से हैं।

पर्यायनय की पहली दृष्टि का नाम ऋजुसूत्र है। यह बौद्धों की दृष्टि है, जिनके अनुसार वस्तु न भूतकाल में थी और न भविष्यत्काल में रहेगी। लेकिन यह बताती है कि वस्तु केवल लक्षणों के समुदाय का नाम है, जो किसी निर्दिष्ट क्षण में कार्य उत्पन्न करते हैं। प्रत्येक नए क्षण में नए गुणों के नए समुदाय होते हैं, और ये ही वस्तुओं के रूप के असली तत्त्व हैं।

नय वस्तुओं को देखने के दृष्टिकोण हैं, और इस प्रकार संख्या में अनन्त हैं। उपर्युक्त चार नय इनके मुख्य भेद हैं। जैनों का कथन है कि न्याय, वैशेषिक, वेदांत, सांख्य और बौद्ध दर्शन ने अनुभव की व्यवस्था पूर्वोक्त चार नयों की दृष्टि से की है और हरेक अपनी दृष्टि को सर्वथा सत्य और दूसरों की दृष्टि को सर्वथा असत्य समझता है। यह उनका नयाभास है। क्योंकि प्रत्येक नय उन अनेक नयों में से एक है, जिसके द्वारा वस्तुएँ देखी जासकती हैं। किसी एक नय की दृष्टि से वस्तु की सत्यता केवल किसी सीमा तक और किसी अवस्था में हो सकती है सर्वथा सत्यता नहीं हो सकती है। वस्तुओं के विषय में असंख्य सत्य वाक्य असंख्य दृष्टियों से हो सकते हैं। वस्तुओं के विषय में किसी एक नय से सत्य वाक्य कहना सर्वथा सत्य नहीं हो सकता है, क्योंकि दूसरे नयों से उन्हीं वस्तुओं के विषय में बिलकुल विरुद्ध व्यवस्था दी जा सकती है।

प्रत्येक वाक्य की सत्यता केवल अवस्थापेक्ष है। यह नहीं कह सकते हैं कि सब अवस्थाओं में सदैव यही सर्वथा सत्य है। भूल न होवे इस लिये प्रत्येक वाक्य के पहले 'स्यात्' शब्द लगा देना चाहिये। इसका यह अर्थ होगा कि यह वाक्य केवल सापेक्ष

जैनों का कथन है कि कोई एकांत सत्य नहीं है—प्रत्येक अपने परिमित अर्थ में सत्य है और प्रत्येक में सप्तभङ्गीनय लग सकता है। जैन कहते हैं कि दूसरे हिंदू शास्त्र अपनी दृष्टि से एकांत सत्य बताते हैं और कहते हैं कि जिस दृष्टि से हम कहते हैं वही दृष्टि सत्य है, अन्य दृष्टियाँ सत्य नहीं हैं। वे नहीं जानते कि सत्य इस प्रकार का है कि प्रत्येक वाक्य की सत्यता आपेक्षक है, और विशेष दशाओं और परिस्थितियों में ही ठीक है—सर्वत्र और सर्वथा ही ठीक नहीं है। इस लिये किसी वाक्य की सत्यता विश्वव्यापी और एकांत रूप से नहीं हो सकती, क्योंकि उसके विरुद्ध वाक्य की सत्यता भी किसी दूसरी दृष्टि से सिद्ध हो जायगी।

सब सत्यता द्रव्यरूप से कुछ नित्य है और पर्यायरूप से कुछ अनित्य है, क्योंकि पहले धर्म जाते रहते हैं और नवीन धर्म आते रहते हैं। इस लिये सत्यता के विषय में हमारे सब वाक्य सापेक्षक सत्य और असत्य हैं। भाव, अभाव, अवक्तव्यत्व, ये नय के तीनों पदार्थ प्रत्येक वस्तु के लिए किसी न किसी रूप और किसी न किसी दृष्टि से एक से लग सकते हैं। भाव और अभाव सर्वथा नहीं हैं और सब वाक्य केवल सापेक्षक ठीक हैं। स्याद्वाद का सम्बन्ध नय सिद्धांत के साथ इस लिये यह है कि किसी वस्तु का निर्णय किसी नय के अनुसार इतनी तरह से हो सकता है जितनी तरह स्याद्वाद में बताई गई हैं। इस लिये किसी भी वाक्य की सत्यता केवल सापेक्षक है। किसी नयानुसार वाक्य के निर्णय में यह बात याद रखनी चाहिए, तभी उस नय का सदुपयोग होगा। यदि किसी विशेष नयानुसार वाक्यों का एकांत सत्य होना कहा जावे और स्याद्वाद सिद्धांतानुसार दूसरे नयों पर ध्यान न दिया जावे तो इन नयों का दुरुपयोग, जैसा कि

अन्य दर्शनों में होता है, होगा और ये वाक्य असत्य होंगे, और इस लिये इन्हें नयाभास कहना चाहिये।

सप्तभगी-नय

जैनशास्त्र इसी नय के द्वारा ससार की समस्त चेतन, अचेतन वस्तुओं का निर्णय करते हैं—विशेषत नव तत्वों का अधिगम (ज्ञान) प्रमाण और नय के द्वारा होता है। जिससे तत्वों का सपूर्ण रूप से ज्ञान हो, वह प्रमाणात्मक अधिगम है, और जिसके द्वारा इनके केवल एक देश का ज्ञान हो, वह नयात्मक अधिगम है।

ये दोनों भेद सात भगीनय में विधि और निषेध की प्रधानता से होते हैं, अत यह नय प्रमाण सप्तभगी और नय सप्तभगी दोनों कहलाता है।

सप्तानां भगाना वाक्याना समाहार समूह सप्तभगी

सात वाक्यों के समूह को सप्तभङ्गी कहते हैं। भङ्ग का अर्थ वाक्य है। एक वस्तु में अनेक धर्म रहते हैं। वे एक दूसरे के विरुद्ध नहीं होते, जैसे देवदत्त पिता, पुत्र, भाई, सुसर, साला, पति इत्यादि सभी है—अपने लड़के का पिता है, अपने पिता का पुत्र है, अपने भाई का भाई है, अपनी लड़की के पति का सुसर है, अपनी बहिन के पति का साला है, अपनी स्त्री का पति है। यद्यपि ये सब धर्म विरुद्ध दिखाई देते हैं, तदपि एक देवदत्त में विद्यमान हैं और अविरुद्ध हैं और ये सब धर्म एक ही नय या दृष्टि से नहीं देखे जाते हैं, अनेक दृष्टियों से अवलोकनीय हैं। इन अविरुद्ध नाना धर्मों का निश्चय ज्ञान सप्तभङ्गीनय के सात वाक्यों द्वारा होता है। सशय हो सकता है कि इस नय के सात ही वाक्य क्यों हैं, अधिक या न्यून क्यों नहीं? तो उत्तर है कि, जिज्ञासु को किसी वस्तु के निश्चय करने में सात सशयों से

अधिक नहीं हो सकते, इस लिये इस नय में सात वाक्य हैं, जो इन सात संशयों के निवारक हैं। इस नय के सात भंग ये हैं —

१, स्यादस्ति घट
स्यात् घट है।

२, स्यान्नास्ति घट ।
स्यात् घट नहीं है।

३, स्यादस्ति नास्तिच घट ।
स्यात् घट है, और नहीं भी है।

४, स्यादवक्तव्यो घट ।
स्यात् घट अवक्तव्य है, अर्थात् ऐसा है कि उस के विषय में कुछ कह नहीं सकते।

५, स्यादस्ति चावक्तव्यश्च घट ।
स्यात् घट है और अवक्तव्य भी है।

६, स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च घट ।
स्यात् घट नहीं है और अवक्तव्य भी है।

७, स्यादस्ति नास्तिचावक्तव्यश्च घट ।
स्यात् घट है, नहीं भी है और अवक्तव्य भी है।

इन वाक्यों में स्यात् शब्द अनेकांत रूप अर्थ-बोधक है। इ के प्रयोग से वाक्य में निश्चयरूपी एक अर्थ ही नहीं समझा जा है, बल्कि उसमें जो दूसरे अंश मिले हुए हैं उनकी ओर भी दृ पड़ती है।

इन वाक्यों में अस्ति शब्द से वस्तु में धर्मों की स्थिति सूचि होती है। यह स्थिति-अभेदरूप आठ प्रकार से हो सकती अर्थात्—१ काल, २ आत्मरूप, ३ अर्थ, ४ संबंध, ५ उपका ६ गुणिदेश, ७ संसर्ग, ८ शब्द।

प्रत्येक स्थिति का उदाहरण देखिये—

काल—घट में जिस काल में अस्तित्व धर्म है, उसी काल में उसमें घट-नास्तित्व अथवा अवक्तव्यत्वादि धर्म हैं। इस लिये घट म इन सब अस्तियों की एक समय ही स्थिति है, अर्थात् काल द्वारा अभेद स्थिति है।

आत्मरूप—जैसे घट अस्तित्व का स्वरूप है, वैसे ही वह और धर्मों का भी स्वरूप है—उसमें अस्तित्व के सिवा और धर्म भी हैं। धर्म जिस स्वरूप से वस्तु में रहते हैं वही उनका आत्मरूप है।

अर्थ—जो घटरूप द्रव्य पदार्थ के अस्तित्व धर्म का आधार है, वही घट द्रव्य अन्य धर्मों का भी आधार है।

सम्बध—जो 'स्यात् सम्बध अभेदरूप अस्तित्व का घटके साथ है, वही स्यात् सम्बध रूप आदि अन्य सब धर्मों का भी घट के साथ है।

उपकार—जो अपने स्वरूपमय वस्तु को करना उपकार अस्तित्व का घट के साथ है, वही अपना वैशिष्ट्य सम्पादन उपकार अन्य धर्मों का भी है।

गुणिदेश—घट के जिस देश में अपने रूप से अस्तित्व धर्म है, उसी देश में अन्य की अपेक्षा से अस्तित्व आदि सम्पूर्ण धर्म भी हैं।

संसर्ग—जिस प्रकार एक वस्तुत्व-स्वरूप से अस्तित्व का घट में संसर्ग है, वैसे ही एक वस्तुत्व-रूप से अन्य सब धर्मों का भी संसर्ग है।

शब्द—जो 'अस्ति' शब्द अस्तित्व धर्म स्वरूप घट आदि वस्तु

का भी वाचक है उसी वाच्यरूप शब्द से सब धर्मों की घट आदि पदार्थों में अभेदवृत्ति है।

इस प्रकार द्रव्यार्थिक नय की प्रधानता से वस्तु में सब धर्मों की अभेदरूप से स्थिति रहती है, और पर्यायार्थिक नय की प्रधानता से यह स्थिति अभेदोपचार के रूप से रहती है। अनेकान्तवाद की रचना इन दोनों के द्वारा होती है।

पूर्वोक्त सात वाक्यों में घट वस्तु दी है। इसके चार रूप हैं अर्थात् निजरूप, पररूप, द्रव्यरूप और पर्याय रूप। इनमें से भी वस्तु का निजरूप चार प्रकार से होता है, अर्थात्—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। उदाहरण—

घट का नाम घट है, कूंडो, नाँदी आदि नहीं है। घट की स्थापना वही क्षेत्र है, जहाँ वह धरा है, दूसरा क्षेत्र नहीं।

घट का द्रव्य मृत्तिका है, सुवर्ण नहीं।

घट का काल वर्तमान है, भूत भविष्यत् नहीं।

घट की मृत्तिकादि उसका द्रव्यरूप अर्थात् निज रूप है। मृत्तिका से जो सैकड़ों चीजें बनती हैं जैसे कूंडा, मटकना, नाँदी आदि, ये उसके पर्य्यायरूप हैं।

सप्तभंगी नय के प्रत्येक वाक्य का स्पष्ट विवरण—

१—स्यादस्तिघट। स्यात् घट है—इसका अर्थ है कि घट अपने निजरूप से है अर्थात् नाम स्थापना (क्षेत्र), द्रव्य और भाव (काल) से है। टेढ़ी गर्दनरूप से घट का नाम है। मृत्तिका इसका द्रव्य है जहाँ वह धरा है वह स्थान उसका क्षेत्र है। जिस समय में वह वर्तमान है वह इसका काल है। इन चीजों के देखते घट है। स्यात् इस बात को बताता है कि घट में केवल ये ही चीजें नहीं हैं जो प्रधानता से बताई गई हैं, बल्कि और भी हैं। यह अनेकान्तार्थ वाचक है। इस वाक्य में सत्ता प्रधान है।

२—स्यान्नास्तिघट । स्यात् घट नहीं है—इसका अर्थ है कि घट पर-नाम, पर-रूप, पर-द्रव्य, पर-क्षेत्र और पर-काल से नहीं है। घट का निजरूप तो टेढ़ी गर्दन थी, लेकिन इस रूप से पृथक् जो रूप है, जैसे चपटा लंबा आदि वह इसमें नहीं है। जैसे पट वृक्षादि का रूप। घट का द्रव्य मृत्तिका है लेकिन पर-द्रव्य सुवर्ण, लोहा, पत्थर, सूत इत्यादि हैं, जो घट में नहीं हैं। घट का क्षेत्र तो वही स्थान था जहाँ वह रखा था यानी पटा या पत्थर, दूसरा स्थान पृथिवी, इत्यादि जो नहीं हैं। घट का निज काल तो वर्तमान था, दूसरा काल भूत या भविष्यत् काल है। इसमें असत्ता प्रधान है। परन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि इसमें घट का निषेध है। नहीं कहने से घट का अस्तित्व चला नहीं गया, बल्कि गौण हो गया और पर-स्वरूप की प्रधानता हो गई है।

यह वाक्य पहले वाक्य का निषेधरूप से विरुद्ध नहीं है, बल्कि इसमें असत्ता प्रधान है और सत्ता गौण है।

३—स्यादस्ति नास्ति च घट । स्यात् घट है और नहीं भी है—पहले घट के निजरूप की सत्ता प्रधान होने से घट का होना बताया है और फिर घट के पर-स्वरूप की असत्ता प्रधान होने से उसका नहीं होना बताया है। घट के निज रूप को देखा जाय तो घट है और पररूप को देखा जाय तो घट नहीं है।

४—स्याद वक्तव्यो घट । स्यात् घट अवक्तव्य है—घटके निज रूप की सत्ता और उसके पररूप की असत्ता—इन दोनों को एक ही समय में प्रधान समझा जाय तो घट अवक्तव्य हो जाता है, अर्थात् ऐसी वस्तु हो जाता है जिसके विषय में कुछ कह नहीं सकते हैं। एक ही समय में असत्ता और सत्ता की

प्रधानता मानने से घट का रूप अवक्तव्य हो जाता है।

५—स्यादस्ति चावक्तव्यश्च घट। स्यात् घट है और अवक्तव्य भी है—द्रव्यरूप से तो घट है, लेकिन उसका द्रव्य और पर्यायरूप एक काल में ही प्रधान भूत नहीं है। सत्तासहित अवक्तव्यता की प्रधानता है। घट के द्रव्य अर्थात् मृत्तिकारूप को देखें तो घट है, परन्तु द्रव्य (मृत्तिका) और उसका परिवर्तन शील रूप दोनों को एक समय में ही देखें तो वह अवक्तव्य है।

६—स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च घट। स्यात् घट नहीं है और, अवक्तव्य भी है—घट अपने पर्यायरूप की अपेक्षा से नहीं है, क्योंकि ये रूप क्षण क्षण में बदलते रहते हैं, लेकिन प्रधानभूत द्रव्य पर्याय उभय की अपेक्षा से यह अवक्तव्यत्व का आधार है, इसमें असत्तासहित अवक्तव्यत्व की प्रधानता है।

७—स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च घट। स्यात् घट है नहीं भी है और अवक्तव्य भी है—द्रव्य पर्याय पृथक्-पृथक् की अपेक्षा से सत्ता असत्ता सहित मिश्रित तथा साथ ही योजित द्रव्य पर्याय की अपेक्षा से अवक्तव्यत्व का आश्रय घट है। मृत्तिका की दृष्टि से घट है। उसके क्षण क्षण में रूप बदलते है, इस पर्याय दृष्टि से घट नहीं है। इन दोनों को एक साथ देखो तो घट अवक्तव्य है।

सारांश—जब किसी वस्तु का निर्णय करना है तो उसे केवल एक दृष्टि से देखकर ही व्यवस्था नहीं देनी चाहिये, प्रत्येक वस्तु में अनेक धर्म होते हैं—उन सभी धर्मों को देखना चाहिये जैन सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक वस्तु सात दृष्टियों से मुख्यतः देखी जा सकती है। इनमें से प्रत्येक दृष्टि सत्य है, पर पूरा ज्ञान तभी हो सकता है जब ये सातों दृष्टियाँ मिलाई जायें।

जैसे प्रत्येक वस्तु में 'अस्ति' लगाकर वाक्य बनाते हैं, वैसे नित्य, अनित्य, एक, अनेक, शब्द भी लगाये जाते हैं, जैसे स्यात् घट नित्य है (द्रव्य रूप से)

स्यात् घट अनित्य है (पर्यायरूप से)

स्यात् घट एक है (द्रव्यरूप से) क्योंकि द्रव्य एक है और सामान्य है।

स्यात् घट अनेक है (पर्यायरूप से—क्योंकि रस, गंधादि अनेक पर्यायरूप है)

एकांत और अनेकांत

एकांत दो प्रकार का है—सम्यक् और मिथ्या। इसी तरह अनेकांत भी दो प्रकार का है।

एक पदार्थ में अनेक धर्म होते हैं, उनमें से किसी एक धर्म को प्रधान कर कहा जाय और दूसरे धर्मों का निषेध नहीं किया जाय तो सम्यक् एकांत है।

यदि किसी एक धर्म का निश्चय कर अन्य सब धर्मों का निषेध किया जाय तो वह मिथ्या एकांत है। सम्यक् एकांत नय है और मिथ्या एकांत नयाभास है।

एक वस्तु में प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम प्रमाणों से अविरुद्ध अनेक धर्मों का निरूपण करना सम्यक् अनेकांत है।

एक वस्तु में प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरुद्ध अनेक धर्मों की कल्पना करना मिथ्या अनेकांत है।

सम्यक् अनेकांत प्रमाण है और मिथ्या अनेकांत प्रमाणाभास है।

सप्तभंगीनय में सम्यक् एकांत और सम्यक् अनेकांत दोनों मिले हैं।

पहला वाक्य एकांत की अपेक्षा से है।

दूसरा वाक्य अनेकांत की अपेक्षा है।

तीसरा वाक्य एकांत और अनेकांत दोनों की अपेक्षा से है।

चौथा वाक्य एकांत और अनेकांत की एक काल में योजना की अपेक्षा से है।

पांचवा वाक्य एकांत और उभयवाद की एक काल में योजना की अपेक्षा से है।

छठा वाक्य अनेकांत और उभय की एक काल की योजना की अपेक्षा से है।

सातवा वाक्य एकांत और अनेकांत और उभयवाद की एक काल में योजना की अपेक्षा से है।

इस नय में मूल भूत भंग पहले के दो वाक्य 'अस्ति' और 'नास्ति' हैं। आगे के ३ से ७ तक वाक्य इन्हीं की योजना से होते हैं।

जैनमत के विद्वानों का कथन है कि अन्य मत एकांत को मानते हैं और जैनमत सम्यक् एकांत और सम्यक् अनेकांत को मानता है। इनके कथनानुसार सांख्यमत केवल द्रव्य को ही तत्त्व मानता है, उसकी पर्य्याय को नहीं। इस लिये उसकी दृष्टि से इस नय का एक ही भंग सत्य है। परन्तु पर्य्याय भी अनुभव सिद्ध है, अत यह मत ठीक नहीं है। बौद्ध इस नय के दूसरे भंग को ही सत्य मानते हैं—यानी इनके मतानुसार पर्य्याय ही तत्त्व है और कोई मुख्य द्रव्य तत्त्व नहीं है। लेकिन घट पदार्थ में मृत्तिका द्रव्य है और उसके पर्य्याय अनेक हैं। ऐसे ही सुवर्ण द्रव्य है और कुंडल कटकादि उसके पर्य्याय हैं। ये अनुभव सिद्ध हैं। अत यह मत भी ठीक नहीं है।

वेदांती इस नय के तीसरे वाक्य को सत्य मानते हैं। वे कहते हैं कि वस्तु सर्वथा अवक्तव्यरूप ही है अब ये अवक्तव्य

शब्द से वस्तु को कहते हैं तो सर्वथा अवक्तव्यता नहीं हुई। कोई कहे कि मैं सदा मौन व्रत धारण करता हूँ। यदि सदा मौन है तो मैं मौन हूँ यह वाक्य कैसे कहा। इसलिये यह भी ठीक नहीं है।

इसी प्रकार अन्य मतों के विषय में भी जैनों का कहना है।

अनेकांत सिद्धांत को सम्यक् रीति से विचार करने पर यह बात समझ में आना कठिन है कि जैनों की दृष्टि से अन्य मत ठीक नहीं हैं। अनेकांत के अनुसार तो सभी मत ठीक हो सकते हैं, क्योंकि उनको किसी न किसी दृष्टि से देखने पर सत्य का अंश अवश्य ही प्रकट होगा। यदि हम अन्य मतों को अपनी दृष्टि से ठीक नहीं समझें तो यह भी तो मिथ्या एकांत हुआ, जिसका जैन शास्त्र ने निषेध किया है। इसमें कोई संशय नहीं कि अनेकांत सिद्धांत बड़ा उदार और विस्तृताशय है, लेकिन जब जैन शास्त्रज्ञ उसे दूसरों के मत-खंडन में लगाते हैं, तो मालूम होता है, उसका समुचित उपयोग नहीं करते। उसके अनुसार तो सभी मत ठीक हो सकते हैं, न कि कोई एक। क्योंकि प्रत्येक वस्तु में अनेक धर्म होते हैं। उसके एक धर्म को देखकर निश्चय कर लेना और अन्य सब धर्मों का विचार न करना सनुचित एकांतवाद है।

अनेकांतवाद एक ऐसी अद्भुत और अनूठी वस्तु है जिसके द्वारा धार्मिक वादविवाद, जो शताब्दियों से चले आये हैं, दूर हो सकते हैं। क्योंकि सत्य किसी एक मत की पूंजी नहीं है, वह तो विश्वव्यापी है और संसार में जहाँ कहीं भी धर्म विचारों का उदय हुआ है; जहाँ कहीं भी तत्त्वज्ञान गवेषण हुआ है, कुछ न कुछ सत्य की प्राप्ति अवश्य हुई है। सत्य को द्रव्य माना जाय तो वह नित्य है और उसके विविध रूपों को माना जाय, जो संसार के नाना धर्मों में अभिव्यक्त हुए हैं, तो, वे उसके पर्य्यायरूप हैं, जो अनित्य हैं। सत्य द्रव्यरूप से

रूप से नहीं है। संसार के अनेक धर्मों में एक जैन धर्म भी है। यदि सब धर्मों में सत्य के पर्यायरूप हैं, तो जैनधर्म में भी सत्य का यही पर्यायरूप है। सत्य द्रव्यरूप से तो नित्य और अकाट्य और अपने नाना पर्यायरूपों में अनित्य और परिवर्तनशील है। यदि अनेकांतवाद से हम इस नतीजे पर आवें तो अनुचित नहीं होगा। निष्कर्ष यह है कि संसार के सभी मत किसी न किसी दृष्टि से ठीक हैं। एक मत दूसरे मत को असत्य नहीं कह सकता है। यदि कहे तो वह अनेकांतवाद के सिद्धांत का दुरुपयोग करता है।

इसके सिवा यह भी दिखाया जा सकता है कि अन्य शास्त्रों के मत भी वास्तव में अनेकांतवाद ही है। इसलिए—

सांख्य—प्रकृति, सत्त्व-रज —तमोगुणों की साम्या-वस्था का नाम है। लाघव, शोष, ताप, वारण भिन्न भिन्न स्वभाववाले अनेक स्वरूप पदार्थों का एक प्रधान स्वरूप करने ही से एक अनेक स्वरूप पदार्थ स्वीकृत हो चुका। एक पदार्थ है लेकिन स्वरूप उसके अनेक हैं। तीनों गुणों का समूह ही प्रधान है, तथापि एक वस्तु को अनेकात्मक स्वीकार करना असंदिग्ध है।

नैयायिक द्रव्यादि पदार्थों को सामान्य विशेषरूप स्वीकार करते हैं। अनेक में एक व्यापक नियम होने से सामान्य और जो अन्य पदार्थों से एक को पृथक् करे, वह विशेष है। जैसे गुण द्रव्य नहीं है, कर्म द्रव्य नहीं है। एक ही को सामान्य विशेष माना है। ऐसे ही गुणत्व, कर्मत्व भी सामान्य विशेष रूप हैं।

बौद्ध मेचकमणि के ज्ञान को एक और अनेक मानते हैं। पाँच रङ्ग रूप रज का मेचक कहते हैं। इसका ज्ञान एक प्रतिभास रूप नहीं है। एक ज्ञान भी नहीं है और अनेक भी नहीं, बल्कि एक पदार्थ के नाना धर्म हैं, जिसमें अनेकांत और एकांत दोनों मिलवाँ ज्ञान होता है।

३—अस्ति एक रूप से है, नास्ति पर रूप से है—दोनों पक्ष रूप से होने चाहिये, नहीं तो अनवस्था दोष आता है। इसका उत्तर यह है कि अनेक धर्म स्वरूप वस्तु पहले ही सिद्ध हो चुकी है। फिर कहने की आवश्यकता नहीं। यहाँ अप्रामाणिक पदार्थों की परम्परा की कल्पना का सर्वथा अभाव है और बिना उसके अनवस्था होती नहीं है।

४—एक काल में ही एक वस्तुमें सब धर्मों की व्याप्ति संकर दोष है, और यह अनेकांत में है। इसका उत्तर है कि अनुभव सिद्ध पदार्थ सिद्ध होने पर किसी भी दोष का अवकाश नहीं है। जब पदार्थ की सिद्धि अनुभव से विरुद्ध होती है, तब इस दोष का विषय होता है।

५—स्वरूप से सत्त्व और पर रूप से असत्त्व अनुभवसिद्ध होने से संकर तथा व्यतिकर दोष नहीं है।

६—एक ही वस्तु सत्त्व, असत्त्व, उभय रूप होने से यह निश्चय नहीं है कि यह क्या है; इस लिये संशय दोष हुआ। इस का उत्तर यह है—संशय होने में सामान्य अंश का प्रत्यक्ष, विशेष अंश का अप्रत्यक्ष और विशेष की स्मृति होना आवश्यक है। जैसे कुछ प्रकाश और कुछ अंधकार होने के समय मनुष्य के समान स्थित स्तंभ को देखकर, लेकिन उसके और विशेष अंशों को नहीं देखकर, (जैसे उसमें पक्षियों के घोंसले अथवा मनुष्य के हाथ पैर वस्त्र शिखा आदि) और मनुष्य के और अंशों को याद कर उसमें मनुष्य का भ्रम करना। परन्तु यह बात अनेकांत वाद में नहीं है; क्योंकि स्वरूप पर रूप विशेषों की उपलब्धि में अनेकांतवाद संशय का हेतु नहीं है।

७—संशय होने से बोध का अभाव है। इस लिये अप्रतिपत्ति दोष है। उत्तर है कि जब संशय ही नहीं है, जैसा कि ऊपर कहा है, तो वस्तु के बोध का अभाव कैसा? इसलिये अप्रतिपत्ति

दोष नहीं है।

८—अप्रतिपत्ति होने से सत्त्व असत्त्व स्वरूप वस्तु का ही अभाव भान होता है; इसलिये अभाव दोष है। उत्तर है कि जब अप्रतिपत्ति दोष ही नहीं है, तो अभाव कैसा। क्योंकि अप्रतिपत्ति होने से ही सत्त्व असत्त्व स्वरूप वस्तु का अभाव भान होता है।

सराश यह है कि जो-जो दोष अनेकांत में बताये जाते हैं, वे उसमें नहीं हैं। पक्षपात से कोई कुछ भी कहे, लेकिन अनेकांत सिद्धांत दोष-रहित है।

अब आश्चर्य यह है कि श्रीशंकराचार्यजी ने अपने शांकर-भाष्य में सप्तभंगीनय का खंडन किया है, और कहा है कि ठंढ और गर्मी की तरह एक ही वस्तु में एक ही साथ सत्त्व असत्त्व आदि विरुद्ध धर्मों का होना संभव नहीं है। इन्होंने अस्तित्व और नास्तित्व को विरुद्ध धर्म बतलाते समय 'स्वरूप से' और 'पर रूप से' इन दो महत्त्व के शब्दों को छोड़ दिया है। यहीं उनकी भूल मालूम होती है। श्रीशंकराचार्य जैसे अद्वितीय और प्रकांड विद्वान् के लिये इस प्रकार अनेकांतवाद का उपहास करना ठीक नहीं मालूम होता है। लेकिन धर्म विषय में ऐसी बातें क्षम्य हैं। यदि प्रत्येक सम्प्रदाय का आचार्य दूसरी सम्प्रदाय के सिद्धांतों को भलीभाँति समझ कर लेखनी उठावे तो उसे खंडन करने का अवसर ही नहीं रहता। जैनाचार्यों ने हिंदू-धर्म के विषय में जो खंडन किया है, वह भी इसी प्रकार का है। यदि वे अनेकांत सिद्धांत का पूर्ण उपयोग करें तो उन्हें किसी धर्म या मत पर आक्षेप करने का कोई अवसर ही नहीं रहता।

हमें चाहिये कि पहले किसी सिद्धांत को अच्छी तरह समझ लें, तब उसके खंडन की चेष्टा करें, पर यह बात प्राचीन काल के धर्माचार्यों की प्रथा के प्रतिकूल है। धार्मिक झगड़ों की जड़ यही असहिष्णुता है। अस्तु।